छत्तीसगढ़ी संस्कृति में रचे बसे लोकगीत

- लेखक : DAKSHIN KOSAL TODAY DESK
- तारीख : February 05, 2024

लोककला मन में उठने वाले भावों को सहज रुप में अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्वत: स्थानांतरित हो जाने वाली विधा है। लोक कला हमारी संस्कृति की पहचान होती है, हमारी खुशी को प्रकट करने का माध्यम होती है।

लोककला का क्षेत्र एवं स्वरुप विस्तृत है। लोककला का वर्गीकरण यदि हम करना चाहें तो वर्ग के और उपवर्ग करने पड़ेंगे यथा लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक वाद्य, लोक श्रृंगार, लोक परम्परा, लोक व्यंजन, लोक शिष्टाचार आदि।

यहां हम केवल लोकगीतों पर ही ध्यान केन्द्रित करें तो हम पाते हैं कि लोकगीत जीवन के अभिन्न अंग है। लोकगीत विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं। तात्कालिक उत्पन्न परिस्थिति में, सामाजिक धार्मिक पर्व में, विशेष आयोजन में। बच्चे के जन्म पर, षष्ठी (छट्ठी) पर उपनयन, जनेऊ संस्कार, विद्यारंभ संस्कार, विवाहादि अवसरों पर हम लोकगीतों के माध्यम से खुशी व्यक्त करते हैं।

त्यौहारों की शुरुआत आषाढ़ मास में रथ-यात्रा से होती है। भगवान जगन्नाथपुरी जी मथुरा से पुरी पधारते हैं तो उनके भक्त उनका धन्यवाद ज्ञापित करते हैं-
ठाकुर भले बिराजेव हो, ठाकुर भले बिराजेव हो।
उड़ीसा जगन्नाथपुरी म भले बिराजेव हो।।

आषाढ़ में वर्षा की बूंदे पड़ते ही किसानों के चेहरे खिल उठते हैं। वे अपने नांगर-बैलों को लेकर खेतों की ओर चल पड़ते हैं। ऐसा

लगता है मानो बैलों के गले की घंटियां हमें गीता-पाठ पढ़ा रही हो, कर्म करने को प्रेरित कर रही हों-
आगे आषाढ़ गिर गे पानी, भींजगे ओरिया भींजगे छानी
धर ले नांगर धर तुतारी, अररर्र अर त त त...

किसान नांगर जोतकर खेतों में बीज बो देता है। खेत में काम करते अपने नंगरिहा के लिए जब किसानिनें हाथों में ककनी-हरैरया-बनुरिया पहने, पैरों में पैरी छनकाती, बटकी में बासी और मलिया में नून-चटनी लेकर खेत पहुंचती हैं, तो बरबस नंगरिहा के मुंह से बोल फूट पड़ते हैं-
बटकी म बसी बऊ चुटकी म नूंन
मैं गावत हौं ददरिया तैं कान देके सून ओ चना के दार...

किसानिन अपनी विरह व्यथा को प्रकट करती है
तरी फतोही ऊपर कुरथा, रहि-रहि के मोला आथे तोरेच सुरता
कुंआ के पानी कुंआसी लगै, परदेश झन जा राजा रोवासी लागै
बागे बगइचा दिखे ल हरियर, मोटरवाला नई दीखै बदे हौं नरियर

नायिका का प्रेमोद्गार सुनकर नायक कभी कभी मर्यादा का मौखिक अतिक्रमण कर जाता है-
करची के पानी गरम करले, तोर चढ़ती जवानी धरम कर ले।
सावन महीने में कुंवारी कन्याएं छोटी-छोटी बाँस की

टोकनी में रेत भरकर और उसमें गेंहू के दाने बोकर भोजली उगाती हैं। श्रावण पूर्णिमा को बहनें अपने भाइयों को राखी बांधती हैं। भोजली के गंगा का रुप मानकर दूसरे दिन नदी या तालाब में ले जाकर एक साथ विसर्जित करती हुई गाती हैं-
देवी गंगा देवी गंगा लहरा तुरंगा हो लहरा तुरंगा
हमर सुघ्घर भोजली दाई के भीजे आठों अंगा, अहो देवी गंगा
आसा खेलेन पासा खेलेन, अऊ खेलेन डंडा
हमर सुघ्घर भोजली दाई के सोने के हंडा, अहो देबी गंगा..

बहनें भाइयों को खुशी-खुशी राखी बांधती हैं। इस समय द्रौपदी द्वारा अपनी साड़ी का पल्ला चीरकर कृष्ण जी की कटी उंगली में बांधने और सुभद्राजी द्वारा बलराम श्रीकृष्ण को राखी बांधने और भाई द्वारा बहन की रक्षा की बात का स्मरण किया जाता है।

भादों अंधियारी पाख अष्टमी को अर्धरात्रि में कृष्ण जन्मोत्सव मनाया जाता है और सोहर गाया जाता है-
जनम लिए कृष्ण कुरारी जगत हितकारी,
भगत सुखकारी हो ललना
हो ललना...
जबहिं गोपाल चले मधुबन को घर
आंगन न सुहाई ए हां जू...
मुरली बजावत धेनु चरावत
बसहि जमुना जी के तीरे ए हां जू...
भादों अंजोरी पाख में गणपति पूजन किया जाता है
गणपति महाराज गणपति महराज, तोरे भरोसा मोला भारी
अहो मन भजो गणपति गणराज, कुमति कलुष कटै...

हिन्दू जनमानस क्वाँर जेंवारा पाख में जगह-जगह दुर्गा माँ का जस गीत, जेंवारा गीत सुनकर भक्तिभाव में डूब जाता है
तुम्हरें दरस बर हां हम आयेन माता तुम्हरे दरस बर हां
हम आयेन माता तुम्हरे दरस बर हाँ
तुम्हरे दरस बर आयेन माता ब्रह्मा विष्णु महेशा
चंढ़े नांदिया शम्भू आए हाथ म धर के लबेदा
ब्रह्मा आए विष्णु आए शिव आए कैलासा
महामाई के रुप देख सब देवतन के मन हुलसा...

कार्तिक महीना भर कुंवारी कन्याएं मुंह अंधेरे उठकर नदी तालाब जाकर स्नान करती हैं और कृष्ण समान अच्छे सुंदर वर की कामना करती हुई शिव पूजन करती हैं। घर-घर दीपावली सजाकर लक्ष्मी पूजा की जाती है।

इन्हीं दिनों सुहागिनी स्त्रियाँ 10-12 की झुण्ड में सुवा गीत गाती हुई सुआ नृत्य करने निकलती हैं। एक टोकनी में मिट्टी का बना सुआ रखकर उसे आदरपूर्वक ढांककर बैठाती हैं और उसके चारों ओर लयबद्ध ताली बजाती हुई घूम-घूमकर सुआ गीत गाती हुई नाचती हैं। इन गीतों में नारी मन के भावों की अभिव्यक्ति छिपी रहती है। सुआगीत के माध्यम से नारी मन की व्यथा, सुख-दुख, सम्पन्नता-विपन्नता, विरह वेदना उभर आती है-
तरि हरि नाना मोर नाना सुवना के तरि-हरि नाना रे ना...
नारे सुअना के तिरिया जनम झनि देय। नारे सुअना
तिरिया जनम मोर गऊ के बरोबर रे सुअना
के जिहां पठवय तिहां जाय। नारे सुवना...

सुआ नृत्य देवउठनी एकादशी तक चलता है। इसी समय दीपावली के दूसरे दिन गौरी-गौरा विवाह का आयोजन गोंड/यादव समाज में बड़े उल्लास से मनाया जाता है। मिट्टी से गौरी-गौरा बनाकर मिट्टी से ही मंडप सजाने के बाद जोत जलाकर शोभायात्रा निकाली जाती है। गंड़वा बाजा की धुन में बरुआ नाचते हुए हाथ बढ़ाकर साँट लेते हैं। फिर उसे नदी या तालाब के जल में विसर्जित कर दिया जाता है।

देवउठनी एकादशी के दिन अहीर-यादव-रावत समाज के द्वारा रावत नाच महोत्सव मनाया जाता है। रंग बिरंगे परिधानों से सजे जरी क जाकेट, रंग-बिरंगे कागज के फूलों से बने कलगी लगे पगड़ी बांधे, एक हाथ में फरी और दूसरे हाथ में पांच हाथ के लाठी, पैरों में रंगीन मोजे, घुंघरु और चरमर करते पनही यही अहीर जवान का बाना होता है।

टिमकी, डफड़ा और गंड़वा बाजा के साथ जब 15-20 जवानों का दल दोहा बोलकर नाचता है, वह दृश्य देखते ही बनता है। दल में गंड़वा बाजा के साथ एक पुरुष नर्तक स्त्री वेश में सज धज कर परी बनकर शामिल होता है।
दोहे ऐसे हैं-
कुकरी के पिलवा रन-बन बगरे, धर-धर खाय बिलाय।
होबे बेटा क्षत्री के रे तैं कै दिन रहिबे लुकाय॥
चार दिन के जिनगी भइया, चार दिन के खेल।
चार दिन के देवारी, फेर कउन मरही कउन जीही॥
जइसे के मालिक लिहेव, दिहेव, तइसे के देबो असीस
रंग महल म बइठै मालिक, जुग जियो लाख बरीस

अगहन पूस मास में खेतों में पककर खड़ी फसल को काटकर किसान खलिहान में ले आता है और मिसाई कर दाना कोठी में रख लेता है। पूस पूर्णिमा की रात में छोटे-छोटे बच्चे अलग-अलग समूहों में घरों घर जाकर अन्नपूर्णा माता का आह्वान करते हुए दान मांगने निकलते हैं और आवाज लगाते हैं-

छेरछेरा छेरछेरा, माई कोठी के धान हेरते हेरा...

किसान भी बच्चों को थोड़ा-थोड़ा अनाज दान करके खुश होता है। इस त्यौहार में दान की महिमा बताई गई है। इन्हीं दिनों ओडिय़ा बसदेवा भी चटकउला बजाते सुबह-सुबह जय गंगा गाते हुए दान मांगने आते हैं।

इन्हीं दिनों सतनामी समाज गुरुघासीदास बाबा के चरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करता है और सत्य की स्थापना के लिए उनकी जयंती मनाकर उन्हें याद करता है। झांझ और मांदर की थाप पर 20-22 नवयुवाओं का दल को झूमकर एक ताल बंधान पर नाचते देखते ही बनता है। गुरु घासीदास की महिमा को एक नर्तक गाता है और शेष नर्तक दुहराते हुए ताल गति पर नाचते हैं जै हो जै हो गुरुघासीदास, चरण म तोर गंगा बहै...

ऋतुराज बसंत के आगमन पर मदनोत्सव मनाने के पूर्व मदन दाहक महादेव की पूजा भी तो जरुरी है। अंचल में शिव-पूजा की धूम मचती है। लोग दूर-दूर से काँवरियों में जल लाकर शिवलिंग में चढ़ाते हुए यथाशक्ति भजन पूजन करते हैं।

फागुन में ऋतुराज बसंत के आते ही धूप सुहानी हो जाती है। होली लोकगीतों के साथ-साथ नगाड़े की थाप पैरों को थिरकने पर मजबूर कर देता है और छैल छबीलों के मुंह से बरबस निकल पड़ता है यह लोकगीत-
चल हाँ रे संतों देबी शारदा गा लइहौ
अरे देबी शारदा गालइहौं संतों देवी शारदा गा लइहौं...
चल हां बिरिज में नाचे नंद के कान्हैया
पिताम्बर उड़ि-उड़ि जाय बिरिज में नाचे नंद के कान्हैया...

इसके अतिरिक्त बांसगीत, चंदैनी गीत, देवार गीत, डंडा गीत, आल्हा, झूमर गीत, बिहाव गीत आदि अनेक क्षेत्रीय लोकगीत अंचलों में गाये जाते हैं। न केवल हमारे छत्तीसगढ़ में वरन देशमें और विश्व में हर क्षेत्र की अलग-अलग बोली और भाषाओं में अलग-अलग लोकगीत हैं, जो जनमन में बसे हैं और लोकरंजन करते हैं।

आलेख

साभार - रुकताही